ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-4* Issue-10* January- 2020
Anthology : The Research

आदिवासी साहित्य चेतना में अरवाली उद्घोष की भूमिका

(त्रैमासिक पत्रिका अरावली उद्घोष के आदिवासी कहानी अंक, मार्च–2008 के विशेष संदर्भ में)

सियाराम मीणा
व्याख्याता हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय,
बूंदी, भारत

सारांश

आदिवासी समाज आज न केवल देश और दुनिया से कटा हुआ है अपितु पिछड़ा, अशिक्षित, शोषित और उपेक्षित है। समाज की मुख्य धारा के लोग उनकी समस्याओं से बेखबर ही नही बल्कि चाहते हैं कि आदिवासी आवाज उठे ही नही। उनकी जो समस्याएं हैं वे चर्चा का विषय ही न बने। लेकिन इतना होते हुए भी आज साहित्य जगत में आदिवासी चिंतन ने धीरे–धीरे अपनी जगह बनाना शुरू किया है। सभा–संगोष्ठियों ने साहित्य जगत में एक हलचल पैदा की है। हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में आदिवासी साहित्य लेखन को बल ही नही मिला बल्कि एक आंदोलन का रूप दिया है। जिस तरह हिन्दी जगत में दलित विमर्श ने साहित्य में दलित समाज का नया समाज –शास्त्र और साहित्य–शास्त्र प्रस्तुत किया है; दलित समाज की समस्याओं को नये सिरे ने देखने–समझने के लिए मजबूर किया है। उसी तरह आदिवासी साहित्य लेखन में अरावली उद्घोष ने आदिवासियों के प्रश्नों और समस्याओं को बुलंद आवाज में अभिव्यक्ति देने का एक सशक्त मंच प्रदान किया है तथा आदिवासी विमर्श को खड़ा किया है, आदिवासी मुद्दों को चर्चा के केन्द्र लाने का स्तुत्य प्रयास किया है।

प्रस्तावना

स्व.श्री बी.पी. वर्मा ''पथिक'' द्वारा स्थापित सम्पादित अरावली उद्घोष ने आदिवासी साहित्य लेखन की जो परम्परा स्थापित की है वह आदिवासी लेखन के क्षेत्र में अद्वितीय हैं। सम्पादकीय, कथा–कहानी, लघु कथा, कविता, संस्मरण, आलोचनात्मक लेख, अनुसंधानपरक लेख, उपन्यास, समीक्षा आदि के साथ–साथ अरावली उद्घोष के विशेषांक निकालकर आदिवासी साहित्य लेखन के क्षेत्र में एक नई अलख जगाई है। हमारा आलोच्य विषय आदिवासी साहित्य चेतना में अरवाली अद्घोष की भूमिका (आदिवासी कहानी अंक–मार्च–2008 के विशेष संदर्भ में) है। इस अंक में 10 आदिवासी कहानियों को जगह देकर निश्चित रूप से आदिवासी कहानी लेखन को न केवल जगह और प्रेरणा मिली है अपितु हिन्दी साहित्य के इतिहास में ऐसा पहला प्रयास है। अतिथि सम्पदक श्री शंकर लाल मीणा द्वारा सम्पादित इस अंक में चरण सिंह पथिक की बक्खड़, रत्नकुमार सामरिया की खेत, डॉ.परदेशीराम वर्मा की फैसला, जसवंत सिंह विरदी की जलती हुई लालटेन, डॉ.लीला मोदी की एक और युद्व, भावसिंह हिरवानी की खुला जेल, युगेश शर्मा की पीछे छूटे लोग, स्नेहलता शर्मा की जंगल का फूल, डॉ.तारिक असलम तस्नीम की उसके हिस्से की जमीन, पुन्नी सिंह की जंगल का कोढ़ जैसी कहानियां प्रकाशित कर पाठकों के सामने रखी है। ये कहानियां आदिवासी जीवन की समस्याओं और यथार्थ को पाठकों के सामने लाने में सक्षम और समर्थ हुई हैं।

बक्खड़ कहानी में चरण सिंह पथिक ने आदिवासी महिला की दुर्दशा का चित्रण किया है। राजस्थान के करौली जिले की हिण्डोन, नादौति और टोडा भीम तहसीलों के संगम का विस्तृत भू–भाग जगरौटी कहलाता है। कहानी में इस क्षेत्र के एक आदिवासी मीणा परिवार में विवाहिता की हुई दुर्दशा और अन्यत्र नाते बैठने पर पूर्व पति से उत्पन्न उसके पुत्र की अपमान गाथा को गूथा गया है। आदिवासी जीवन पर रचित यह कहानी कहानी कला पर खरी उतरती है। जल जंगल और जमीन की समस्या आज आदिवासी की सबसे बड़ी समस्या है। सरकार की उपेक्षा और गलती नीतियों तथा उद्योगपतियों और दबंगों ने मिलकर उसको जल जंगल और जमीन से बेदखल कर दिया है। रत्नुकुमार सामरिया की खेत कहानी भी इसी समस्या को उजागर करती है। आदिवासी कहानी प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त 'फैसला''कहानी में परदेशीराम वर्मा ने खोखले होते जंगलों और सलवाजुडूम तथा नक्सलवादी प्रसंगों पर कहानी को केन्द्रित किया है। कहानी का प्रमुख पात्र जगन कहता है कि धीरे–धीरे खदान

पर कब्जा होगा सेठों का और देश के कारखाने की उखड़ती जायेगी सांसे। कारखाना भूखा रह जायेगा। धीरे–धीरे मर जायेगा। सेठों के पेट लगेंगे फूलने। यह षडयंत्र है।''[1] सुकूल काका मिटते जंगल के दर्द को बयान करते हुए कहते हैं कि 'दादी सब क्या से क्या हो गया। कहां गया जगंल का जीवन। खुल्ला घुमते थे। राज करते थे। महुआ बीनते थे। चिरई मारते थे। मछरी घरते थे। बाजार हाट जाते थे। कहां गया हमारा जीवन। पहले पुलिस दरोगा, साहेब का डर था, अब ये कमाण्डर बेटा लोगों का डर है। जलती हुई लालटेन कहानी में जसवंत सिंह विरदी ने एक आदिवासी किसान के माध्यम से सरकार, भ्रष्ट न्याय व्यवस्था और दमनकारी कानून का पर्दाफास किया है। आदिवासी किसान की जमीन बाहुबलियों द्वारा हड़प ली गई है। अदालत किसान से गवाह मांगती है। पर दो गवाह बाहुबलियों द्वारा खरीद लिये और दो मरवा दिये गये। अपने हक के लिए बोलने वाले पर कानून का मजाक उड़ाने का आरोप लगाकर पांच वर्ष कारावास की सजा सुनाई जाती है। यह है हमारी सरकार और न्याय व्यवस्था। एक और युद्ध कहानी में डॉ.लीला मोदी ने एक शोध छात्रा मानुषी के माध्यम से झारखण्ड के संथाल परगना के दुमका जिले के आदिवासी समाज की कुप्रथाओं–हड़िया (शराब), दबंगों द्वारा जमीन हड़पने की समस्या, डायन प्रथा, ओझाओं का आतंक, महिलाओं के प्रति अत्याचार के चित्रण के साथ ही एक और युद्ध के माध्यम से महिला मुक्ति का प्रयास किया गया है। यह कहानी एक सशक्त आदिवासी कहानी कही जा सकती है। आदिवासी समाज शराब के कारण बर्बाद है। महिलाओं को डायन बताकर मारना, नंगा करके गांव में घुमाना, दबंगों द्वारा महिलाओं का शोषण आदि का मार्मिक चित्रण किया है। शोधार्थी के सम्पर्क आई नूनी कहती है कि ''यहां दारू पीकर पत्नियों की पिटाई तो हर घर में आम बात है। पहली पत्नी से मन भरते ही लोग उसे डायन बताकर छोड़ देते हैं और दूसरी ले आते है। इसलिए बेसहारा औरतों की संख्या बढ़ती जा रही है।''[2] वह वहां की स्त्रियों से मिलती है। उनके द्वारा भोगी गई नारकीय यंत्रणाएं सुनकर वह अत्यधिक दुखी हो उठती है। कहानी में आदिवासी महिलाओं को एकता के शुत्र में बांध कर शराब बंदी, ओझाओं से मुक्ति का सफल प्रयास कहानी में किया है।

'खुला जेल' कहानी में भावसिंह हिरवानी ने नक्सलवादी हिंसा, पुलिस और नक्सलियों के बीच पिसते आदिवासियों की व्यथा का मार्मिक चित्रण किया गया है। नागेश साहब देवलू पटेल को सान्त्वना देते हुए कहते हैं कि 'नहीं देवलू तुम्हारा कोई कसूर नही है। लेकिन ऐसा कब तक चलेगा? कब तक यहां के आदिवासी पुलिस और नक्सलियों के बीच पिसते रहेंगे ? गोली पुलिस चलाये या फिर नक्सली, छलनी तो आदिवासी का ही सीना होता है। आये दिन मुखबिर और सलवाजुडूम समर्थक होने के शक में कौन मारा जा रहा है ?[3] वह देवलू से कहता है ''यार देवलू आखिर ये नक्सली चाहते क्या है? आम लोगों को मूल–भूत सुविधाओं से वंचित करके किसका भला किया उन्होंने? पेपर में पढ़ा था, अस्पताल में मरीजों की हालत अत्यन्त दयनीय थी। जगदलपुर के लोग तो बूंद–बूंद पानी के लिए तरस गये।'' नक्सलवाद बनाम विकास की समस्या पर चर्चा करते हुए देवलू कहता है कि आज हमारा बस्तर एक खुला जेल बनकर रह गया है। नक्सलियों ने यहां हरतरफ आतंक मचा रखा है। कहीं किसी का जीवन सुरक्षित नही है। मुझे तो लगता है कि ये यही चाहते है कि हम आदिवासी अनपढ़–गवांर ही बने रहें ताकि ये अपना स्वार्थ साधते रहें।''[4] अब आदिवासियों का बस्तर एक प्रकार से जेल लगने लगा है। ''पीछे छूट गये लोग'' कहानी में युगेश शर्मा ने भील जनजाति के परबत नामक ऐसे युवक की कथा का चित्रण किया है जो पढ़ लिख कर डॉक्टर बन जाता है पर धीर–धीरे अपनी जाति वर्ग के संस्कारों को भूलकर शहरी बन जाता है, अवसर आने पर भी उस वर्ग के लिए कार्य न कर उपेक्षा का भाव रखता है तथा पिता द्वारा दिलाई गई कसम ''अपने गांव को और गांव के पीछे छूट गये लोगों को कभी बिसरायेगा नहीं। हम लोगों को तुझसे ढ़ेर सारी उम्मीदें हैं, बेटा। तूने अपनी सफलता के द्वारा अंधेर गांव में जो रोशनी फैलायी है, अब तेरी मदद से वह दिन दूनी रात चौगुनी फैलनी चाहिए।''[5] लेकिन व्यस्तता और जीवन शैली में आये बदलाव के कारण गांव और पीछे छूट गये लोगों से उनका सम्पर्क टूटता चला गया। आदिवासी संस्कारों से प्रेम रखने वाली जीवन साथी डॉ. सोभना उसे इस गलती का एहसास दिलाती हुई कहती है कि ''अब तुम केवल डॉ.पी.एस.पटेल हो..एक ऐसे शहरवासी इंसान, जो अपनी जड़ को, अपने सच्चे रिस्तों और अपनी मूल जवाबदारियों को बिसराकर महानगर की सुविधाओं में भटक गया है।.....यदि तुम्हारे भीतर वह आदिवासी युवक आज जिन्दा होता तो तुम आदिवासी क्षेत्र में अपनी पदस्थापनाओं को रद्द करवाकर यूं यहां न बने रहते।'' [6] आखिर डॉ.शोभना उसे आदिवासी इलाके में जन सेवा के लिए तैयार कर लेती है।

''जंगल का फूल'' में कहानीकार स्नेहलता शर्मा ने आदिवासियों के स्वभाव, संस्कार, संस्कृति, आदिवासी प्रतिभा के साथ साथ समाज में फैली अशिक्षा को भी कहानी के केन्द्र में रखा है तथा सभ्य कहे जाने वाले समाज की फुहड़ता और आदिवासियों के प्रति उनके नजरिये को भी पाठकों के सामने उजागर किया है। अक्षय और फुलवा कहानी के प्रमुख पात्र है। अक्षय नामक फोरेस्ट ऑफिसर जंगल के बीच बसे चूरचु गांव में अपने बंगले पर पहुंचता है जहां उसका भोले–भाले आदिवासियों से परिचय होता है। फुलवा नामक आदिवासी युवती की तीरंदाजी व निशाने की प्रतिभा को देखकर वह उसे आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित करता है तथा उसके पिता को सहमत कर फुलवा को शहर में आयोजित प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए ले जाता है पर अशिक्षित होने के कारण उसे प्रतियोगिता में भाग नही लेने दिया जाता है। बल्कि शहर वासियों की अश्लिल हरकतों का और सामना करना पड़ता है। 'उसके हिस्से की जमीन' कहानी में लेखक डॉ.तारिक असलम 'तस्नीम' ने आदिवासियों के साथ हो रह अन्याय व अत्याचार को बखुबी चित्रित किया है। आदिवासी जब–जब शहर की ओर मुंह करता है, व्यवस्था के पास न्याय प्राप्त करने जाता है वह ठगा जाता है। कहानी इस बात को पुरजोर ढ़ंग से पाठकों के

सामने रखती है। आदिवासी वनोपज पर सदियों से निर्भर है। वह अपनी मेहनत से प्राप्त वनोपज की वस्तुओं को औने–पौने दामों लेकर ठग लिये जाते हैं। ''कभी –कभी वाजिब मूल्य से भी कम कीमत देकर वस्तुएं लोग झटक लिया करते और मुस्कुराते हुए चल देते। लेकिन मैं देखता, बाजार के बड़े दुकनदार भी ठगने से गुरेज नही करते। उन्हें घटिया से घटिया चीजें देकर ऊंची कीमत वसुलते।''[7] करीम मियां दो सो रूपये के मुरगे के मात्र 100 रूपये थमा देता है, वह कहता है। मेरी असली कमाई तो इन लोगों से ही होती है। वरना मुर्गी के धंधें में दो–चार रूपये से अधिक मुनाफा कहां है। असली लाभ तो इनसे मुर्गा खरीदने में हैं।''[8] आदिवासियों के बाजार में पहुंचते ही गैर आदिवासियों की अपेक्षा उनकी बिरादरी के ही अनेक बिचौलिये उनको घेरे में ले लेते और वे बेचारे बिना बाजार भाव समझे–बूझे अपनी महंगी वस्तुएं सस्ती कीमत पर देकर एक ओर बैठ जाते हैं। विकास को तरसते आदिवासियों की जमीन निरंतर दबंगों द्वारा छीन ली जा रही है। अदालत और पुलिस भी बिकी हुई है। कहानी में कमल सोरेन की पुस्तेनी जमीन लहलहाती फसल सहित कोर्ट केश में हार जाने के कारण गणेश मुर्मू के हाथ चली जाती है। कोर्ट में हारने का एक मात्र कारण यह था कि गणेश मुर्मू ने मजिस्ट्रेट के हाथों में दस हजार की गड्डी रख दी थी और मन बहलाने के लिए परिवार की ही एक लड़की को भी पेश किया था इसलिए जीत उसकी हुई।[9] और कमल सोरेन अपनी पुस्तैनी जमीन से बेदखल कर दिया जाता है। वह फैसला सुनते ही कचहरी के बरामदे में सिर पकड़कर बैठ गया और फूट–फूट कर रोने लगा। लोग कहने लगे कोई पागल लगता है। यह एक अनपढ़ आदिवासी की स्थिति जो, हमारी इस व्यवस्था में न्याय प्राप्त करने में सफल नही हो पाता है।

जंगल का कोढ़'' कहानी में प्रसिद्ध साहित्यकार पुन्नी सिंह ने आदिवासियों के जंगल से बेदखल होने, वनोपज के अधिकार से वंचित करने तथा पुलिस, पटवारी, जंगल के साहब से अमानुषिक यातना के दर्द को मार्मिक ढ़ंग से उजागर किया है। सरई गांव का मंगतू और मुंगिया कहानी के प्रमुख पात्र है। वे पत्तले बनाकर, शहद, बेहड़ा, हर्रा, लाख, आमला आदि इकट्ठा कर अपना गुजारा करते हैं। पर पुलिस, पटवारी, जंगल के साहब उन लोगों को जंगल का चोर और कोढ़ समझ कर मारते हैं जिनके पुरखे हजारों सालों से जंगल में जीये हैं, जिनकी पीढ़ियां जंगल में ही खपी है। जिनको जंगल से अपार प्रेम है। ''रामेश्वर मंगतू को समझाता हुआ कहता है कि चाचा तू समझता क्यों नहीं, जिसकी लाठी उसकी भैंस। जंगल उनका है जिनके पास दौलत है, जंगल उनका है जिनके पास अधिकार है। वे दिन अब नही रहे जब जंगल, जंगल में रहने वालों का होता था। अब जंगल ठेकेदारों का है।[10] मंगतू जंगल से पत्तल बनाने के लिए पत्ते लेकर घर जा ही रहा था कि रास्ते में फोरेस्ट गार्ड, पटवारी और साल्ह पुरवा के सेठजी को देखकर ठिठक गया। फोरस्ट गार्ड पर अब हैवानियत सवार थी। वह मंगतू को गालियां देकर मारने लगा ''उसकी पीठ पर टिकी पत्तों की गठरी जमीन पर आ गिरी। मंगतू जमीन पर पड़ा–पड़ा बुरी तरह हॉफ रहा था। उसका शरीर मार और माटी से एक बुरे आकार में बदल गया था जिसको खुद मंगतू भी पहिचान पाने में मुश्किल अनुभव कर रहा था। दो शब्द उसके कानों में बार–बार बिलबिला उठते थे–'चोर और कोढ़' ....क्या वह चोर है? जंगल का कोढ़ है।[11] इस प्रकार यह कहानी आदिवासियों की व्यथा और व्यवस्था की हैवानियत को पाठकों के सामने मार्मिक ढ़ंग से प्रस्तुत करती है।

संदर्भः–

1. अरावली उद्घोष के कहानी अंक,मार्च–2008 पृ.सं.34
2. अरावली उद्घोष के कहानी अंक,मार्च–2008 पृ.सं.42
3. अरावली उद्घोष के कहानी अंक,मार्च–2008 पृ.सं.41
4. अरावली उद्घोष के कहानी अंक,मार्च–2008 पृ.सं.45
5. अरावली उद्घोष के कहानी अंक,मार्च–2008 पृ.सं.47
6. अरावली उद्घोष के कहानी अंक,मार्च–2008 पृ.सं.54
7. अरावली उद्घोष के कहानी अंक,मार्च–2008 पृ.सं.54
8. अरावली उद्घोष के कहानी अंक,मार्च–2008 पृ.सं.56
9. अरावली उद्घोष के कहानी अंक,मार्च–2008 पृ.सं.61
10. अरावली उद्घोष के कहानी अंक,मार्च–2008 पृ.सं.59